ऐतिहासिक-ज्ञान की दार्शनिक समस्याएँ

ऐसा ज्ञान जो साधारण नियमों की खोज नहीं करता, बल्कि वस्तु-विशेष या घटना-विशेष का होता है, उसके विषय में काल से उत्पन्न होने वाली समस्याएँ उस प्रकार से नहीं उठेंगी जैसी पिछले अध्याय में उठाई गई हैं। इतिहास का ज्ञान किसी सामान्य नियम की खोज न होकर किसी घटना-विशेष को समझने की चेष्टा है। और इसी तरह प्रत्यक्ष का विषय वर्तमान में स्थित कोई वस्तु या घटना होती है, न कि यह नियम जिसके अनुसार यह माना जाता है कि वह घटना घटी है, या वस्तु वहाँ उपस्थित हुई है। वास्तव में नियमों के संदर्भ में देखने पर वस्तु भी घटना का ही रूप धारण कर लेती है, क्योंकि हमारा उद्देश्य तब यह जानना होता है कि वह कब और किन परिस्थितियों में उत्पन्न होती है। प्रत्येक वस्तु, जिसका हमें ज्ञान होता है, उसका प्रादुर्भाव और विलय दोनों होते हैं और केवल मध्य अवस्था में वह व्यक्तता को प्राप्त होती है। परन्तु इस तरह देखने पर एक तो यह बात माननी पड़ेगी कि जो इस समय व्यक्त अवस्था में है वह पहले अव्यक्त अवस्था में था, और अपने विलय के बाद पुन: उस अव्यक्त अवस्था को प्राप्त होगा। गीता में 'अव्यक्तादीनि भूतानि ...' कह कर इसी बात की ओर संकेत किया गया है, पर इस सम्बन्ध में एक प्रश्न तो यह उठता है कि प्रादुर्भाव के पहले की अव्यक्त अवस्था में और विलय के बाद की अव्यक्त अवस्था में कोई भेद है या नहीं? और यदि है तो क्या है? दूसरा प्रश्न इस बात से सम्बन्धित है कि अव्यक्त और व्यक्त अवस्था में क्या भेद है? क्या जो व्यक्त हुआ है उसकी सत्ता अभिव्यक्ति के पहले और अभिव्यक्ति के बाद में एक सी ही रहती है?

इन प्रश्नों के उत्तर भिन्न-भिन्न दिशाओं में ले जाते हैं और उन दिशाओं के अनुसार अलग-अलग दर्शनों का जन्म होता है। न्याय दर्शन में प्रागभाव और ध्वंसा-भाव का भेद पहले प्रश्न के सन्दर्भ में ही किया गया है। परन्तु इसीलिए उनकी किसी अव्यक्त अवस्था की बात करना बेकार लगता है। अव्यक्त की बात तो सांख्य दार्शनिक उठाते हैं जो कार्य को कारण में पूर्ण रूप से निहित मानते हैं। उनके इसी मत को सत्कार्यवाद का नाम दिया गया है। पर निहित मानने पर भी कुछ भेद तो मानना ही पड़ेगा, हो सकता है कि यह भेद चेतना से सम्बन्धित हो,

जिसका कार्य अव्यक्त को व्यक्त करना है। इस प्रकार से ज्ञान के सत्य होने का लक्षण ही यह समझा जाता है कि यह अभिव्यक्ति छोड़ कर ज्ञान के विषय में और कुछ भी न जोड़े। परन्तु ऐसा मानने पर 'प्रादुर्भाव' का अर्थ चेतना का विषय मानना होगा, न कि किसी वस्तु का अस्तित्व में आना और इस तरह इसके अनुसार यह मानना पड़ेगा कि सब वस्तुओं का सब समय अस्तित्व है। न किसी का जन्म होता है, न किसी का विनाश और इस प्रकार काल चिरन्तन भ्रम का रूप धारण कर लेगा। असल में, सब कुछ देश जैसा ही हो जाता है, जिसमें सब वस्तुएँ सदैव विद्यमान होंगी।

अव्यक्त और व्यक्त का भेद और उनके बीच के सम्बन्ध दर्शन के सदैव चिन्तन के विषय रहे हैं। परन्तु उसके बारे में विस्तार से विचार की यहाँ कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। वस्तु-विशेष या घटना-विशेष का ज्ञान देशकाल में स्थित विषय का ज्ञान होने के कारण उन समस्याओं से मुक्त समझा जाता है जो ज्ञान की त्रिकालिकता के सन्दर्भ में उत्पन्न होती हैं। परन्तु पहले तो भूत और वर्तमान सम्बन्धी विभिन्नता के ज्ञान में एक अन्तर माना जाता है, जिसकी चर्चा जरूरी है। भूत का ज्ञान प्रत्यक्ष का विषय न होकर, स्मृति का विषय होता है या किन्हीं ऐसी बातों पर आधारित होता है जो होती तो वर्तमान में हैं लेकिन जिनके आधार पर हमें ज्ञान ऐसी घटनाओं का होता है जो सिद्धान्तत: कभी भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकतीं। यह एक तरह से अनुमान पर आधारित ज्ञान कहा जा सकता है, पर इसमें और अन्य प्रकार के ज्ञानों में मूलत: भेद यही है कि जबकि धूम्र के आधार पर अनुमानित चिह्न प्रत्यक्ष का विषय हो सकती है, अशोक, अकबर या बुद्ध के बारे में अनुमानित घटनाएँ कभी भी ऐसा रूप धारण नहीं कर सकतीं।

इसके विपरीत प्रत्यक्ष का विषय अनुमान के विषय की सत्यता-असत्यता प्रदान करता है। पर यदि भूत सम्बन्धी ज्ञान के विषय कभी भी प्रत्यक्ष के विषय बन ही नहीं सकते तब उनकी सत्यता-असत्यता का निर्धारण कैसे हो सकता है। यही इतिहास की मूलभूत दार्शनिक समस्या है, और इसको सुलझाए बगैर यह फैसला मुश्किल है कि इतिहास सम्बन्धी ज्ञान वास्तव में ज्ञान है भी या नहीं।

इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि भूत की घटनाओं के बारे में वर्तमान के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है, उसकी सत्यता-असत्यता का निर्धारण उन घटनाओ के वर्तमान में कुछ अन्य अवशेष मिलने पर लगाया जाता है, और चूँकि जब अवशेष वर्तमान में प्रत्यक्षानुभूत होते हैं, इसलिए वास्तव में कोई नई समस्या नहीं उठती। दूसरी ओर, यह भी कहा जा सकता है कि विज्ञान के कई क्षेत्रों में इस तरह से, दोहरा अनुमान होता है। एक बार प्रत्यक्ष से अनुमानित तथ्य की ओर और दूसरी बार अनुमानित तथ्य से किसी अन्य नए प्रत्यक्ष की ओर। इन अनुमानित तथ्यों की स्थिति, इस प्रकार उन कुछ पुराने देवताओं की तरह है जो स्वयं अगोचर होते हुए भी अपने प्रभाव से अपनी सत्ता

अभिव्यक्त करते रहते हैं। ऐतिहासिक तथ्य भी इसी प्रकार स्वयं अगोचर होते हुए भी अपने प्रभाव द्वारा ही जाने जाते हैं।

इतिहास और अन्य वैज्ञानिक ज्ञान में यह समानता प्रथम दृष्टि में उस समस्या को सुलझाती प्रतीत होती है जिसको हमने इतिहास की मूलभूत समस्या के रूप में देखा था। परन्तु थोड़ा और सोचने पर यह समानता केवल ऊपरी और सतही दिखाई देती है। ऐतिहासिक घटना तो वह घटना है जो घट चुकी होती है, यानि जिसका अस्तित्व ही एक प्रकार से समाप्त हो चुका है। पर, जिसका अस्तित्व समाप्त हो चुका होता है, उसका प्रभाव कैसे हो सकता है? विज्ञान के अनुमानित तथ्य गोचर न हों, लेकिन उनका अस्तित्व तो माना ही जाता है, और वह भी वर्तमान में। उनका गोचर प्रभाव इसलिए समझ में आ सकता है। परन्तु जो है ही नहीं उसके प्रभाव की बात करना अजीब ही लगेगा। फिर भी, ऐसा कहा जा सकता है कि जिसके आधार पर ऐतिहासिक तथ्य का निर्णय किया जाता है उसका उस तथ्य से कोई न कोई सम्बन्ध तो होगा ही, अन्यथा हम उसको आधार के रूप में कैसे स्वीकार कर लेते? कुछ क्रम-बद्ध सम्बन्ध तो मानना ही पड़ेगा, पर इससे भी जो अधिक मानना ज़रूरी है वह यह है कि ऐसे क्रम-बद्ध सम्बन्ध अनेक हैं, क्योंकि बगैर ऐसा माने यह फैसला नामुमकिन हो जायेगा कि वर्तमान के आधार पर हमने जिस भूतकाल की घटना का अनुमान किया है वह वास्तव में सत्य थी। उसके सत्य होने की सम्भावना तो इसी पर निर्भर करती है कि उससे सम्बन्धित कुछ अन्य बातें, जिनका पहले पता नहीं था, वर्तमान या भविष्य में मिलती हैं या नहीं?

इतिहास का आधार अपने आप में दो भिन्न प्रकार की वस्तुएँ होती हैं। एक वे जिन्हें अवशेष के रूप में देखा जा सकता है, और दूसरी किसी के द्वारा इन घटनाओं का वर्णन। अवशेष स्वयं दो प्रमुख वर्ग बनाते हैं, एक जो भाषा में बँधे होते हैं, दूसरे जो वस्तुओं से संयोजित होते हैं। यह भेद महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अपने से अधिक महत्त्वपूर्ण समानता को छिपाता है, और वह समानता यह है कि अवशेष चाहे भाषा में बद्ध हो या वस्तु से संयोजित वह होता हमेशा मानव की कृति ही है। और जो मानव की कृति होती है वह हमेशा कुछ अर्थ लिए होती है, ऐसा अर्थ जो वस्तु को माध्यम बना कर भी वस्तु से सदैव परे जाता है। इस तरह जिस प्रकार भाषा मनुष्य के अर्थ को अभिव्यक्त करती है, उसी प्रकार जो अवशेष है उसके अर्थ को समझने की चेष्टा और उस चेष्टा में सफलता-असफलता के मापदण्ड़ का निर्धारण करना। एक तरह से यह समस्या भी मनुष्य को समझने के संदर्भ में उत्पन्न होती है, क्योंकि मनुष्य सदैव किसी न किसी को जन्म देता रहता है और मनुष्य-मनुष्य के बीच का संवाद एक-दूसरे को समझना ही है। आगे चलकर हम इसकी विशद चर्चा भी करेंगे। परन्तु एक जो इतिहास के आधारों का अर्थ समझने से और संवाद में है, वह सिद्धान्ततः इस बात से सम्बन्धित है कि

जिससे हम बात कर रहे हैं वही हमको यह बता सकते हैं कि हम उसकी बात ठीक समझे हैं या नहीं, जबकि यदि अर्थ का स्रष्टा ही मर गया है तो यह सम्भावना ही नहीं रहती कि कोई अधिकारपूर्वक यह कह सके कि जो हमने समझा है वह सही समझा है या नहीं। इतिहास एक प्रकार से ऐसे को ही समझने की चेष्टा है जिनके स्रष्टा सदैव के लिए नष्ट हो चुके हैं। अतः विषय में हमारी समझ सही है या गलत, इसका फैसला एक तरह से नामुमकिन है। तरह-तरह के अन्दाज लगाये जा सकते हैं, पर अन्दाज लगाने को तो ज्ञान नहीं कहते।

तब क्या इतिहास ज्ञान नहीं है? और यदि ज्ञान है, तो कैसा ज्ञान है। यह बात हमने पहले कही थी कि इतिहास का ज्ञान कम से कम किसी सामान्य का ज्ञान नहीं है, और इसलिए उसके सम्बन्ध में वे समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं जो किसी भी नियम के ज्ञान के सम्बन्ध में होती हैं। परन्तु चूँकि वह भूतकाल से सम्बन्धित होता है और मनुष्य की अर्थ-गर्भ कृति के आधार पर मनुष्य के बारे में ज्ञान है, इसलिए उसकी समस्या कुछ और रूप में होती है। भूतकाल का ज्ञान नक्षत्रों से लेकर सौर-मण्डल, पृथ्वी, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि तक के विषय में है। लेकिन क्योंकि यह ज्ञान एक प्रकार से नियमों पर आधारित होता है इसलिये उसके विषय में भूत-भविष्यत् के भेद का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। फिर भी नक्षत्रों, सौर-मण्डल और पृथ्वी की भूतकाल की अवस्थाओं के बारे में ज्ञान है, उससे जो प्राणी की भूतकाल की अवस्थाओं के बारे में ज्ञान है, उनमें एक गहरा भेद यह है कि प्राणि-जगत् अपने अवशेष छोड़ जाता है और उसी के आधार पर हम उसकी भूतकाल की अवस्थाओं का क्रम स्थापित करते हैं। बहुत-बार तो हम इन्हीं के आधार पर पुराने जलवायु की भी कल्पना करते हैं क्योंकि इतना हमें भी पता होता है कि इस प्रकार के पशु-पक्षियों को किस प्रकार के जलवायु की जरूरत होती है। लेकिन जगत् में अवशेष जैसी कोई चीज़ नहीं होती। कम से कम उस प्रकार से नहीं जिस प्रकार से प्राणि-जगत् में होती है। जो 'आज' है वह कार्य रूप में किसी कारण का परिणाम है। पर कल्पना वास्तव में सत्य है या नहीं, इसका निश्चय कैसे किया जायेगा?

अधिकतर तो, कार्य-कारण के ज्ञान की सत्यता, परीक्षण की अवस्था में, कारण को बार-बार दुहराकर कार्य की प्राप्ति के द्वारा सिद्ध होती है। पर अगर कारण दुहराया ही न जा सके तो उसके 'कारण' होने की बात का फैसला नामुमकिन हो जायेगा। उसका स्थान केवल एक सम्बद्धता ले लेगी, जो अन्ततः एक सम्बद्ध कहानी से अधिक कुछ नहीं रह जायेगी। विश्व की उत्पत्ति की चर्चा, चाहे वह कितने ही वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में की जाय, इससे अधिक और कुछ नहीं है। ...।

❑